

---

## इकाई 6 राष्ट्रीय आन्दोलनों की विचारधारा, सामाजिक आधार तथा उनके कार्यक्रम

---

### इकाई की रूपरेखा

- 6.0 उद्देश्य
- 6.1 प्रस्तावना
- 6.2 राष्ट्रीय आन्दोलनों की उत्पत्ति के कारण
  - 6.2.1 हीनता की भावना
  - 6.2.2 पाश्चात्य शिक्षा की भूमिका
  - 6.2.3 धर्म-प्रचारकों की भूमिका
- 6.3 राष्ट्रीय आन्दोलनों की विचारधारा
- 6.4 राष्ट्रीय आन्दोलनों के सामाजिक आधार
- 6.5 राष्ट्रीय आन्दोलनों के कार्यक्रम
- 6.6 सारांश
- 6.7 शब्दावली
- 6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

### 6.0 उद्देश्य

---

प्रत्येक राष्ट्रीय आन्दोलन की कोई न कोई विचारधारा होती है, कुछ कार्यक्रम होते हैं, तथा स्पष्ट सामाजिक आधार होता है। इस इकाई में राष्ट्रीय आन्दोलनों के इन तीनों महत्त्वपूर्ण घटकों का विवेचन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप इस योग्य होंगे कि:

- राष्ट्रीय आन्दोलन का अर्थ स्पष्ट कर सकें;
- राष्ट्रीय आन्दोलनों के विकास का वर्णन कर सकें;
- राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारणों की व्याख्या कर सकें;
- राष्ट्रीय आन्दोलनों की विचारधाराओं की समीक्षा कर सकें;
- राष्ट्रीय आन्दोलनों के सामाजिक आधार का विश्लेषण कर सकें; तथा
- राष्ट्रीय आन्दोलनों के कार्यक्रमों का वर्णन कर सकें।

---

### 6.1 प्रस्तावना

---

राष्ट्रीय आन्दोलन शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं। इसका उपयोग किसी भी ऐसे राष्ट्रव्यापी संघर्ष के लिए किया जा सकता है। जिसको जनसाधारण देश के कल्याण के

हित में आवश्यक समझें। इस वृहत अर्थ में, राष्ट्रीय आन्दोलन ऐसा कोई भी संघर्ष हो सकता है जिसका लक्ष्य राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक कार्यों के द्वारा जन जीवन में सुधार करना हो। परन्तु, व्यवहार में, उपनिवेशों में राष्ट्रीय आन्दोलन का अर्थ था विदेशी शासन से मुक्ति के लिए संघर्ष। अतः यह एक राजनीतिक प्रक्रिया थी। इस प्रकार, राष्ट्रीय आन्दोलन प्रायः साम्राज्यवाद-विरोधी अथवा विदेशी शासन विरोधी थे। उनका मूल ध्येय उपनिवेशों की पूर्ण स्वतन्त्रता तथा स्वराज्य था।

यद्यपि सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों का उद्देश्य एक ही था, फिर भी सभी उपनिवेशों में उनका रूप एक जैसा नहीं था। आन्दोलन के प्रकार एवं रूप का निर्धारण भी होता था जिस विदेशी प्रभुत्व के विरुद्ध उन्होंने संघर्ष करना था उसकी प्रकृति कैसी थी। इसी कारण अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध स्वतन्त्रता के लिए भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उपाय हालैंड के विरुद्ध इंडोनेशिया, अथवा फ्रांस के विरुद्ध हिन्द-चीन के साधनों से भिन्न थे। या फिर पश्चिमी शक्तियों के प्रभुत्व के विरुद्ध चीन के संघर्ष का अपना अलग ही रूप था।

दोनों विश्व युद्धों के अंतराल के दशकों में, राष्ट्रीय आन्दोलनों के रूप में उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष को गतिशीलता प्राप्त हुई। पश्चात्य विश्व की समस्त पूर्वी सीमा पर, मोरक्को से लेकर मध्य पूर्व, दक्षिण एशिया एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष तेज होते गए। इसीलिए तो प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त के काल को राष्ट्रीय आन्दोलन की विशाल प्रक्रिया का सूचक कहा गया। इसके सफल परिणाम 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद मिलने आरम्भ हुए।

मोरक्को में **अब्दुल करीम** (Abd-el-karim) ने फ्रांसीसी तथा स्पेनिश दोनों को चुनौती दी; मिस्र में **साद ज़ग़लुल पाशा** (Saad Zaghlul Pasha) ने ब्रिटेन के विरुद्ध राष्ट्रवादियों का नेतृत्व किया, तथा सीरिया में फ्रांसीसी मैन्डेट शासन के विरुद्ध विद्रोह हुआ। टर्की, ईरान तथा अफ़गानिस्तान में नए क्रान्तिकारी नेताओं का उदय हुआ जिन्होंने तानाशाही लहजे में आधुनिकीकरण थोपने के प्रयास किए। इन सब में, **मुस्तफ़ा कमाल** सबसे सफल सिद्ध हुआ, जिसने प्राचीन औटोमन साम्राज्य की पद्धति से बाहर आकर, टर्की को अपमान एवं आरोपित शांति संधि से बचाया, देश का एक राष्ट्र-राज्य के रूप में संगठन किया तथा आधुनिकीकरण का मार्ग अपनाया। उधर, सुदूर पूर्व में चीन में क्रान्तिकारी आन्दोलन का विकास विभिन्न अभियानों के परिणामस्वरूप हुआ, तथा कुओमिन्तांग (Kuomintang - KMT) चीनी राष्ट्रवाद के प्रतीक के रूप में उभरा। राष्ट्रवादियों (KMT) के नेता **च्यॉंग-काई-शेक** ने साम्यवादियों के सत्तारूढ़ होने के प्रयास को विफल कर दिया।

उपनिवेशों के क्षेत्र में सबसे अधिक ध्यानाकर्षण का केन्द्र भारत था। **गाँधीजी** के नेतृत्व में, भारतीय राष्ट्रवादियों की माँगें इतनी अधिक होती गईं जिन्हें पूरा करना ब्रिटिश सरकार के लिए सम्भव नहीं था। काँग्रेस ने अपने आधार का विस्तार करके जन आंदोलन विकसित किया। उसमें ब्रिटिश शासन को भारत में निष्क्रिय करने की क्षमता थी। एशिया, मध्य पूर्व एवं अफ्रीका के अनेक देशों के नेता प्रेरणा के लिए गाँधीजी के द्वारा प्रभावित हुए।

प्रमुख एशियाई देशों में श्रीलंका और फिलीपीन्स ऐसे थे जिनको राष्ट्रीय माँगों से मेल खाते हुए सुधार प्राप्त हुए। उधर मलाया में तो द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व लगभग कोई राष्ट्रीय आन्दोलन उभरा ही नहीं। सबसे महत्वपूर्ण तथा अभूतपूर्व घटना तब घटी जब 1935 में फिलीपीन्स के राष्ट्रमंडल (The Philippine Commonwealth) की स्थापना की गई। इसके लिए निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, आंतरिक स्वायत्ता के एक दशक के पश्चात फिलिपीन्स का पूर्ण स्वतन्त्रता का आध्यावास दिया गया था। बर्मा में, डच ईस्ट इंडीज़ (इंडोनेशिया) में तथा हिन्द चीन में राष्ट्रवादियों की बढ़ती आकांक्षाओं तथा अपेक्षाओं की

तुलना में स्वशासन के लिए सुधार के लिए किए गए उपाय नगराय थे। उधर इन देशों के राष्ट्रवादी अपने संगठनों को सशक्त तथा आन्दोलन को सक्रिय बना रहे थे। तीनों ही देशों में हिंसात्मक घटनाएँ घटीं। कभी कभी इन हिंसक घटनाओं का नेतृत्व साम्यवादियों ने भी किया। परन्तु, इनमें से किसी भी देश की विदेशी सरकार को तब तक कोई गम्भीर संकट उत्पन्न नहीं हुआ जब तक जापानी आक्रमण ने इस सभी प्रदेशों को अपने अधिकार में नहीं ले लिया।

सभी उपनिवेशों में क्रोध इतना तीव्र हो गया कि साम्राज्यवाद का विरोध राष्ट्रवाद का पर्याय जैसा प्रतीत होने लगा। ऐसा एशिया और अफ्रीका के अधिकांश देशों में अनुभव किया गया। परन्तु, चीन एवं कोरिया में यह आक्रोश न केवल पाश्चात्य देशों के विरुद्ध था, वरन् जापान के विरुद्ध भी था। नेहरू ने अपनी पुस्तक *Towards Freedom* में सत्य ही लिखा था कि राष्ट्रवाद “मूलतः एक विरोधी भावना” थी। इस भावना को घृणा और क्रोध से प्रोत्साहन मिला; यह क्रोध मुख्यतः अन्य समूहों तथा विशेषकर पराधीन देशों के विदेशी शासकों के विरुद्ध था।

## 6.2 राष्ट्रीय आन्दोलनों की उत्पत्ति के कारण

उपनिवेशों में, पश्चिमी शासक देशों के लोगों को लोक प्रशंसनीय सेवाओं और व्यापार में श्रेष्ठ एवं उच्च-वेतन वाले पद प्राप्त हुए थे, जबकि शिक्षित स्थानीय व्यक्तियों को निम्न-स्तरीय पद ही प्राप्त होते थे। कभी-कभी तो वे नौकरियों से वंचित ही रह जाते थे। अधिकांश पराधीन देशों में, यूरोपीय कम्पनियों के अधिकार में ही सभी बड़े उद्यम पाए जाते थे। इन उद्यमों से उन्हें भारी कमाई होती थी। दूसरी ओर कीनिया जैसे अनेक अफ्रीकी देशों में अधिकांश खुदरा व्यापार एशियाई लोगों के हाथों में था। इन्हें भी विदेशी शासक अपने एशियाई उपनिवेशों से लाए थे। सामान्यतया, विशाल मुनाफ़े की धनराशि स्थानीय विकास के लिए व्यय नहीं की जाती थी। वह तो शासक देशों तथा उनकी कम्पनियों के पास चला जाता था। यहीं नहीं, बहुधा विदेशी शोषण कर्त्ता स्थानीय भूमि को बहुत ही सस्ते दामों में खरीद लेते थे, या फिर उन पर स्थानीय कृषकों से मुफ्त में खेती करवाते थे।

इस सबका अर्थ यह था कि उपनिवेशों के स्थानीय लोगों का जीवन स्तर बहुत ही नीचा था, चाहे वह पहले से बेहतर भले ही हो। यदि औपनिवेशिक शासक चाहते तो यह जीवन स्तर काफ़ी ऊँचा हो सकता था। अधिकांश एशियाई और अफ्रीकी लोग निर्धन थे। उनमें से अनेक तो प्रायः भुखमरी के शिकार हो जाते थे। इसका एक परिणाम यह भी हुआ था कि उपनिवेशों के लोग, यूरोपवासियों की तुलना में, अधिक बीमार रहते थे, तथा अल्पायु में ही उनकी मृत्यु हो जाती थी। सम्भव था कि स्थानीय लोगों (natives) को स्वयं अपनी दुर्दशा का स्वयं ज्ञान न हो कि उनकी जीवन बर्बर तथा अल्पकालीन था। इसीलिए बहुधा उन्होंने विद्रोह नहीं किए। परन्तु, उनकी आँखों के सामने यूरोपीय उदाहरण थे, तथा धीरे-धीरे अधिकाधिक लोगों को यह अनुभव होने लगा कि उनके साथ कितना अन्याय हो रहा था। उन्होंने भी सुंदर और सुखद जीवन के स्वप्न देखने आरम्भ कर दिए।

### 6.2.1 हीनता की भावना

पश्चिमी शासक देशों के लोग एशिया एवं अफ्रीका के निवासियों को बराबर यह जताते रहते थे कि वे हीन थे, क्योंकि वे अश्वेत वर्ग के थे, उनकी जाति तथा सभ्यता भी हीन थी। ऐसी भावना विशेषकर अफ्रीका के कृष्ण वर्ण के लोगों में उत्पन्न की गई थी। उनमें से अनेक लोगों के पूर्वजों को विदेशियों ने पकड़कर गुलाम बना लिया था। दासत्व ने हीनता

को गहरा धब्बा लगा दिया था। उसी प्रकार, एशिया के पीले और गेंहुआ वर्ण के लोगों को भी पिछड़ा हुआ माना जाता था। ऐसा प्रचार किया जाता था कि न तो उनकी योग्यता में सुधार हो सकता था, और न वे अपना शासन चलाने में सक्षम थे। उनको अच्छे नौकर या श्रमिक अवश्य माना जाता था, परन्तु प्रचार यह भी किया जाता था कि न तो स्थानीय मूल निवासियों (natives) में बुद्धिमत्ता थी, न चरित्र और न ही इच्छा शक्ति।

किसी भी उपनिवेश की जनता को अपनी शासन व्यवस्था के संचालन में निश्चित भागीदारी प्राप्त नहीं थी। भारत जैसे कुछ ब्रिटिश उपनिवेशों में जनता को अनमने ढंग से स्थानीय विधान परिषदों में अधिकाधिक प्रतिनिधित्व दिया गया। फिर भी उनको सदा ही हीन (inferior) अनुभव करवाया गया, क्योंकि शासकों ने वित्त और रक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय सदा अपने ही नियन्त्रण में रखे। सदा ही थोड़े से विदेशियों के हाथ में ही प्रमुख पद रहे, तथा विदेशी आप्रवासियों को वहीं सुख सुविधाएँ उपलब्ध कराई गईं जो उन्हें अपने देशों में मिलती थीं। परन्तु स्थानीय जनता को अपने ही देशों में उन सभी सुविधाओं से वंचित रखा गया जिनका उपभोग विदेशी करते थे।

दक्षिण अफ्रीका, काँगो तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों की जनता के पास सामान्यतया राजनीतिक अधिकार नहीं थे। कुछ स्थानों पर तो जनता के पास कोई भी अनुलंघनीय अधिकार नहीं थे। सामान्यतया उनको अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं थी, उनके समाचार पत्रों को सेंसर किया जाता था, देश में, विशेषकर संकट के समय, उनके अबाध आवागमन पर भी प्रतिबंध होता था। अफ्रीका के कुछ दक्षिणी भागों में तो स्थानीय निवासियों को परिचय पत्र साथ रखने पड़ते थे। प्रायः उनके लिए पृथक न्यायालय होते थे, उनको जो 'न्याय' मिलता था उसका रूप भी अलग होता था। उनको एक समान अपराध के लिए यूरोपीय लोगों की अपेक्षा अधिक कठोर दंड दिया जाता था। आमतौर पर लोगों को अकारण ही बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया जाता था जिसके लिए 'कानून की सामान्य प्रक्रिया' का पालन भी नहीं होता था। राजनीतिक मामलों में तो बिना मुकदमा चलाए ही दंडित करके कारावास दे दिया जाता था।

### 6.2.2 पाश्चात्य शिक्षा की भूमिका

दूसरी ओर, औपनिवेशिक शासक, उनके अधिकारी तथा धर्म-प्रचारक अपनी ओर से यह कहते रहते थे कि वे शिक्षा तथा धर्म के द्वारा पिछड़े हुए लोगों को अच्छे नैतिक जीवन तथा स्वराज्य के लिए तैयार कर रहे थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ उपनिवेशों में शासकों ने इस दिशा में कुछ सफल प्रयास किए भी। उन्होंने पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति लागू की तथा सफ़ाई व्यवस्था सुधारने के प्रयास किए। उन्होंने स्थानीय बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा, तथा कुछ थोड़े से वर्ग के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था भी की।

कुछ स्थानीय युवकों (natives) ने अवश्य फ्रांस, ब्रिटेन अथवा संयुक्त राज्य अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त की। कुछ ने स्वदेश में भी अच्छी शिक्षा प्राप्त करने के प्रयास किए। कुछ चीनी युवाओं ने जापान में उच्च शिक्षा ग्रहण की। यह एशियाई तथा अफ्रीकी शिक्षित व्यक्तियों ने पाश्चात्य प्रौद्योगिकी, विचारों एवं आदर्शों को ग्रहण करके सफल राष्ट्रवादियों के रूप में उभरे, तथा उन्होंने यूरोपीय औपनिवेशिक शासन का खुलकर विरोध किया। ऐसे शिक्षित व्यक्ति, जिनको उनकी अपेक्षा के अनुसार पद तथा अवसर नहीं मिले, प्रमुख रूप से राष्ट्रवादी आन्दोलन में सक्रिय हुए।

### 6.2.3 धर्म-प्रचारकों की भूमिका

अनेक उपनिवेशों में ईसाई धर्म प्रचारकों (missionaries) ने "युद्ध में जाने वाले सिपाही की

लगन से" स्थानीय लोगों का धर्म-परिवर्तन करवाया। जहाँ एक और ईसाई प्रचारकों तक उनके धर्मावलम्बी अधिकारियों ने अनेक स्थानीय लोगों को अपना अनुयायी तथा आज्ञाकारी बनाया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने राष्ट्रवाद की भावना एवं आशा को जन्म दिया। इस राष्ट्रीय भावना ने प्रतिफल के रूप में पाश्चात्य जीवन और आचार के विरुद्ध विरोध को जन्म भी दिया। यह विरोध उस समय शत्रुता के रूप में परिवर्तित हो गया जब साम्राज्यवादी सरकारों ने उनका पक्षपात करना आरम्भ किया जो कि धर्म-परिवर्तित ईसाई हो गए थे, तथा अन्य स्थानीय लोगों के विरुद्ध नीतियाँ अपनाकर उनके साथ दुर्व्यवहार किया। भारत अथवा मोरक्को जैसे देशों में बड़ी संख्या में लोगों ने अपने मूल धर्मों के प्रति आस्था बनाए रखी, तथा उनकी रक्षा करने के लिए हर सम्भव उपाय किए। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बड़े समूहों ने अपने-अपने धर्म को राष्ट्रीय भावना का मूल आधार बनाया। विदेशी धर्म का विरोध भी राष्ट्रवाद का एक कारण बना।

धर्म-प्रचारकों (missionaries) द्वारा ईसाई धार्मिक शिक्षा ने प्राचीन धार्मिक विश्वासों और जीवन शैली को चुनौती दी। हाँ, कुछ आशा को भी जन्म दिया गया। इन आशाओं और चुनौतियों के संदर्भ में एशिया और अफ्रीका में हुई प्रतिक्रिया ने राष्ट्रवाद के मार्ग प्रशस्त किए। एक प्रतिक्रिया स्वरूप काँगो में एक ऐसा धार्मिक विश्वास उत्पन्न हुआ, जो राष्ट्रवाद का मार्गदर्शक बना। एक अन्य प्रतिक्रिया यह हुई कि पारम्परिक धर्म विश्वास और भी सशक्त हो गए। ऐसा सुसंचालित धार्मिक-सामाजिक आन्दोलनों के फलस्वरूप सम्भव हो सका। इनमें प्रमुख थे: भारत में ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज। इनका उदय उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में हुआ। उसी प्रकार, मोरक्को में *सलीफिया आन्दोलन* का विकास हुआ। इन आन्दोलनों का मुख्य उद्देश्य धार्मिक विश्वासों एवं परम्पराओं पर आधारित, अपने देशों का, राजनीतिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण करना और नवजीवन प्रदान करना था। अफ़गानिस्तान में एक समाचार पत्र के सम्पादक महमूद तार्जी (1911-18 की अवधि में) ने देश में इस्लाम की शिक्षा के औचित्य पर बल देते हुए, इसको अखिल-इस्लामवाद, अखिल-एशियावादी एकता तथा आधुनिकीकरण से सम्बद्ध किया। भारत में राष्ट्रवाद के महान प्रतीक *स्वामी विवेकानन्द*, जो संत भी थे और देशभक्त भी, ने राष्ट्रवाद को आध्यत्मिकता तथा हिन्दू धर्म के प्राचीन गौरव के शिखर पर पहुँचा दिया।

ईसाई धर्म को विदेशी प्रभुत्व और दमन का प्रतीक मानकर, इसके विरुद्ध शत्रुता, तथा राष्ट्रवाद के पक्ष में भावनाओं का उदय भी हुआ। ईसाई धर्म की बौद्धिक शिक्षा ने काले वर्ण के अफ्रीकी लोगों को यह दर्शाया कि मानवतावादी आदर्शों तथा साम्राज्यवादी प्रथाओं में कितना विरोधाभास था। एशिया और अफ्रीका के निवासियों ने अनुभव किया कि किस प्रकार ईसाई धर्मावलम्बी न्याय और स्वतन्त्रता को उसके राजनीतिक परिवेश से अलग कर रहे थे। उन्होंने दो पृथक मानदंड तय किए थे - *एक अपने लिए और दूसरा शासित जनता के लिए।*

एशिया और अफ्रीका के अधिकाधिक भाग में लोगों के लिए धीरे-धीरे राष्ट्रवाद ही उनका नया धर्म होकर उभर रहा था। दूसरी ओर जो नेता तथा अभिजन वर्ग के थे अपनी परम्पराओं को बनाए रखते हुए पाश्चात्य संस्थाओं, पाश्चात्य अर्थव्यवस्था तथा उनकी वैज्ञानिक तकनीक का अनुकरण करना चाहते थे। अरब लोग इस असमंजस में थे कि वे कौन सा मार्ग अपनाएँ। एक ओर तो उनका राष्ट्रवाद पारम्परिक यूरोपीय पद्धति का था अतः वे आधुनिकीकरण से प्रेरित थे। दूसरी ओर उनका राष्ट्रवाद इस्लाम की परिष्कृति के उद्देश्य से चलाया जा रहा आन्दोलन था।

### बोध प्रश्न 1

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) पूर्व उपनिवेशों में हीनता की भावना किस प्रकार प्रतिबिम्बित हुई?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) राष्ट्रीय आन्दोलनों के विकास में ईसाई धर्म-प्रचारकों ने क्या भूमिका निभाई?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

### 6.3 राष्ट्रीय आन्दोलनों की विचारधारा

जैसा कि 'राष्ट्रीय आन्दोलन' से स्पष्ट है, राष्ट्रवाद सदा इन आन्दोलनों की मूल विचारधारा होती है। यह राष्ट्रवाद अपने में एक उग्र या विप्लवकारी विचारधारा है यह तब और भी उग्र हो जाती है जब राष्ट्रवाद में मार्क्सवाद-लेनिनवाद जैसी विचारधारा भी समाहित हो जाए।

विचारधारा ऐसा महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक आधार होता है जिससे व्यक्ति विशेष परिवर्तनशील समाज में अपनी भागीदारी के महत्त्व को समझ सकता है। अतः विचारधारा ऐसी संरचना कही जा सकती है जिसमें विभिन्न व्यक्ति मिलकर भावनात्मक समूह का निर्माण कर सकते हैं। सामान्य उद्देश्य की खोज में विभिन्न व्यक्ति ऐसे सम्बन्धों और निष्ठा का विकास करते हैं जिससे पारम्परिक व्यवस्था में उत्पन्न किसी अभाव को भरा जा सके। जिस विचारधारा को सामान्यतया स्वीकार किया जाता है वह सामान्यजनों तथा अभिजनों के मध्य सांझे विश्वास उत्पन्न करने का कार्य करती है। इसके द्वारा समाज के विविध वर्ग एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते हैं। इसका मूल विश्वास यह है कि पारम्परिक व्यवस्था की अपेक्षा व्यक्तियों और समाज के लिए बेहतर जीवन सम्भव है।

राष्ट्रीय आन्दोलनों की विभिन्न विचारधाराओं में राष्ट्रवाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा व्यापक है। सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों के इतिहास का संकेत है कि राष्ट्रवाद के पीछे विचार यह होता है विदेशी राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व से मुक्ति प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में, यह विदेशी राजनीतिक साम्राज्यवादी शासन, आर्थिक शोषण तथा जातीय भेदभाव या असमानता के विरुद्ध विद्रोह का सूचक है।

राष्ट्रवाद की विषयवस्तु स्थान, जनसमूह तथा समय के साथ बदलती रहती है। चाहे राष्ट्रवाद एक सामान्य विचारधारा है, तथापि इसके विभिन्न रूप हो सकते हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है कि सभी अफ्रीकावासी तो कृष्ण (काले) वर्ण के नहीं होते, फिर भी सभी अफ्रीकी देशों, विशेषकर सहारा के दक्षिण के देशों में, विदेशी श्वेत शासकों के विरुद्ध उनके कृष्ण वर्ण ने उनमें एकता को जन्म दिया। एशिया में लोगों के रंग का राष्ट्रवाद पर उतना प्रभाव नहीं पड़ा, चाहे यहाँ भी जातीय एवं श्वेत प्रभुत्व के विरोध में कोई कमी नहीं पाई गई। पूर्वी एशिया, विशेषकर कोरिया, में जापान के विरुद्ध असंतोष ने राष्ट्रवाद को विकसित किया, चाहे दोनों के वर्ण एक ही रंग के थे।

अधिकांश उपनिवेशों में राष्ट्रवाद का विकास विभिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक एवं जातीय समूहों के मध्य एकता की भावना से हुआ। इस भावना ने विदेशी प्रभुत्व से आर्थिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता को बलवती बनाया। इसी के कारण जातीय समानता की माँग उठी। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपनिवेशों की जनता कोई भी बलिदान करने को तैयार थी। जिन देशों में साम्राज्यवादी देशों का प्रत्यक्ष शासन था वहाँ राष्ट्रवाद का उदय तीव्र गति से हुआ, परन्तु जहाँ उपनिवेशवाद प्रबल था और साम्राज्यवादी शासन अप्रत्यक्ष था वहाँ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तक राष्ट्रवाद का विकास नहीं हुआ।

दोनों विश्व युद्धों के अंतराल काल में एक नई शक्ति का विकास हुआ जिसने राष्ट्रवाद को चुनौती दी ताकि उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद को शीघ्रता से पराजित किया जा सके। यह नया सिद्धान्त साम्यवाद था, जो कि मार्क्सवाद - लेनिनवाद की विचारधारा पर आधारित था। इसका विकास 1917 की रूसी क्रान्ति के पश्चात् तेज़ी से हुआ। परन्तु इन दोनों विचारधाराओं में प्रत्यक्ष संघर्ष नहीं हुआ। वे या तो समानान्तर चले या फिर अलग-अलग मार्गों पर। यद्यपि साम्यवाद का झुकाव अन्तर्राष्ट्रीयवाद की ओर था, और इसने राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित नहीं किया, फिर भी रणनीतिक कारणों से उपनिवेशों में साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में इसकी सहानुभूति राष्ट्रवाद के साथ थी।

लेनिन को यह विश्वास हो गया था कि उपनिवेशों के निवासी साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। उसको यह लगा कि उस समय साम्यवादी विचारधारा को प्रोत्साहित करना सही नहीं होगा, क्योंकि उस समय, लेनिन के अनुसार, साम्राज्यवाद को नष्ट करने के लिए शिक्षित वर्गों द्वारा तथाकथित "पूँजीवादी-राष्ट्रीय" क्रान्ति चल रही थी। यद्यपि यह साम्यवादी विचारधारा के विपरीत था, फिर भी लेनिन ने सोवियत संघ के सहयोग का प्रस्ताव किया ताकि राष्ट्रवादी तत्त्वों को सशक्त किया जा सके। राष्ट्रवादी तत्त्वों से सहयोग के फलस्वरूप साम्यवादियों को ईरान, अफ़गानिस्तान तथा चीन में महान लोकप्रियता मिली। बाद में चीन में राष्ट्रवादियों और साम्यवादियों में झगड़ा हो गया; वे एक दूसरे से अलग हो गए। यद्यपि आरम्भ में, 1928 में राष्ट्रवादियों के द्वारा साम्यवादियों को पराजित होना पड़ा था, अंततः उनके संघर्ष के परिणामस्वरूप 1949 में चीन में साम्यवादियों की विजय हुई, और वे सत्ता में आ गए। अन्य अनेक देशों में भी, उनके राष्ट्रीय आन्दोलनों में साम्यवादी दलों के द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ऐसा उन्होंने सोवियत संघ के कहने पर किया।

## बोध प्रश्न 2

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) विचारधारा राष्ट्रीय आन्दोलन में किस प्रकार एकता स्थापित करती है?

.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....

2) राष्ट्रवाद का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....  
.....  
.....  
.....  
.....

## 6.4 राष्ट्रीय आन्दोलनों के सामाजिक आधार

लगभग सभी उपनिवेशों में राष्ट्रीय आन्दोलनों का आरम्भ लोगों के छोटे-छोटे समूहों द्वारा असंगठित विरोध प्रदर्शन के रूप में हुआ। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने जन-आन्दोलनों का रूप ले लिया। राष्ट्रीय आन्दोलनों की प्रगति में समाज के सभी वर्गों की कुछ न कुछ भूमिका रही।

आरम्भ में आन्दोलनों की अगुवाई कुछ नेताओं तथा बुद्धिजीवियों ने की। उन्होंने जनसाधारण को संगठित किया। उन्होंने आम जनता को स्वतन्त्रता का अर्थ और उसकी आवश्यकता समझाई। लोगों ने उनका साथ दिया क्योंकि वे (तत्कालीन) समय की आवश्यकता की अभिव्यक्ति कर रहे थे। धीरे-धीरे राष्ट्रीय आन्दोलनों के साधन के रूप में राजनीतिक दलों और समूहों का विकास हुआ। किसानों, श्रमिकों तथा महिलाओं ने भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए अपने आन्दोलनों को संगठित किया।

समय-समय पर, तथा विभिन्न तरीकों से अधिकाधिक लोगों को यह विश्वास होता गया जब स्वाधीनता का स्वप्न पूरा होगा तब सब कुछ ठीक हो जायगा। अतः अधिकाधिक लोग इन आन्दोलनों में शामिल हुए, और उनकी भागीदारी ने इन अभियानों को राष्ट्रीय संघर्ष का रूप दिया। इस प्रक्रिया में उन्हें अपनी कठिनाइयों की और अधिक अवगति हुई। जब उन्हें शिकायतों का आभास हुआ तब जनसाधारण का विरोध बढ़ने लगा, तथा उन्होंने अपने विचारों को खुलकर अभिव्यक्त किया। जब जनता की शिकायतें बढ़ती गईं, उनका विरोध-प्रदर्शन और भागीदारी अधिक हुई तब राष्ट्रीय जागृति भी उत्पन्न हुई और स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आन्दोलनों को नए आयाम मिले।



एशिया तथा अफ्रीका के लोगों को पाश्चात्य व्यक्तियों, विशेषकर ईसाई धर्म-प्रचारकों तथा आशावादी बुद्धिजीवियों ने यह सिखाया कि उन्हें आशावान रहना चाहिए। कुछ थोड़े से एशियाई और अफ्रीकी युवाओं ने पश्चिमी देशों में शिक्षा भी प्राप्त की। 1920 के दशक में, और उसके पश्चात्, उनके अपने देशों के नेताओं ने, पहले समाचारपत्रों और फिर रेडियो के माध्यम से, तथा उभरते राजनीतिक दलों, सहायता समितियों और श्रमिक संगठनों के द्वारा यह समझाया कि भविष्य में उनकी स्वतन्त्रता, न्याय और प्रचुरता की उपलब्धि उनके अपने राष्ट्रीय प्रयासों से ही हो सकती थी। एशिया-अफ्रीकी लोगों ने पहले राष्ट्र संघ और फिर संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की घोषणाओं में “मौलिक मानव अधिकारों”, “मानव के सम्मान और मूल्यों” तथा धर्म और जाति के भेदभाव के बिना, “सभी के लिए मौलिक स्वतन्त्रताओं” के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की। उन्होंने इन उद्घोषणाओं में विश्वास करते हुए, यह आशा व्यक्त की कि उनको भी यह सभी अधिकार एवं स्वतन्त्रताएँ मिलनी चाहिए।

राष्ट्रीय आन्दोलनों के नेताओं के प्रेरणा स्रोत उतने ही विविध थे जितने कि उनकी जनता तथा उनके अपने व्यक्तित्व। वे आशावादी थे, वे भयभीत भी थे, तथा वे अपने और अपने लोगों के लिए महत्वाकांक्षी भी थे। निश्चय ही कुछ ऐसे भी नेता थे (जैसे इन्डोनेशिया के डा. सुकर्ण) जो अपनी व्यक्तिगत शक्ति में वृद्धि के साथ-साथ अपने लिए उच्च वेतन तथा अन्य सुख सुविधाओं के अभिलाषी थे - जैसे कि सुन्दर घर, बड़ी गाड़ियाँ तथा सुन्दर महिलाओं का साथ। कुछ ऐसे नेता भी थे (जैसे भारत में नेहरू, बर्मा में आँग सान, तन्ज़ानिया में नायरेरे और सेनेगल में सेंघर) जो चाहे व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं से मुक्त नहीं थे, फिर भी वे उच्च आदर्शवादी होने के साथ-साथ देश हित को सदा व्यक्तिगत लाभ से ऊपर रखते थे। जैसा कि सभी के साथ होता है, उनके प्रेरक तत्त्व (motivations) मिले जुले थे, तथा उनमें परिवर्तन होते रहते थे। परन्तु, यह भी सत्य है कि उनमें से अनेक नेताओं को बहुत दुखद अनुभव हुए, जिसने उनके राष्ट्रवाद को और भी गम्भीर तथा गतिशील बना दिया। जब इन नेताओं ने अपना राजनीतिक जीवन आरम्भ किया था, तब वे कोमल (नरम) सुधारक मात्र थे उनकी संतुष्टि के लिए सुधार पर्याप्त थे, यदि स्वराज्य की दिशा में प्रगति की कोई आशा दिखाई देती हो तब वे औपनिवेशिक व्यवस्था में रहते हुए कार्य करने को तैयार थे। परन्तु, जैसे जैसे उन्होंने अधिक सुधारों की माँग की, तथा उसके लिए कार्य किया, वैसे वैसे इनका जीवन संकटमय हो गया; उन्हें धमकियाँ दी गईं; उन में से कुछ को देश से निष्कासित तक होना पड़ा। कुछ को बन्दी बनाया गया तथा कभी-कभी तो बुरी तरह पीटा भी गया। कुछ नेताओं एवं युवा कार्यकर्त्ताओं को फाँसी पर भी लटका दिया गया। इस प्रकार वे शहीद होकर राष्ट्रवाद के प्रमुख प्रतीक बन गए। जो जीवित रहे उन्होंने विरोध और भी उग्र कर दिया। परिणामस्वरूप उनको और अधिक यातनाएँ सहनी पड़ीं। वे अपने देशों की राष्ट्रीय पार्टियों के प्रमुख नेताओं के रूप में उभरे। कुछ का उदय श्रमिक एवं किसान आन्दोलनों तथा संगठित विरोध प्रदर्शनों एवं हड़तालों से भी हुआ। उन्होंने राष्ट्रवाद को विकसित किया। उनकी गिरफ्तारियों ने जनता में राष्ट्रीय उन्माद को जन्म दिया, जिसके कारण राजनीतिक दल, समूह तथा स्वयं राष्ट्रीय आन्दोलनों को बल और शक्ति प्राप्त हुई। भारत में (उदाहरण के लिए) गाँधी, नेहरू, तिलक, पटेल, मौलाना आज़ाद इत्यादि को जेल यात्राएँ करनी पड़ीं। अफ्रीका के विभिन्न भागों में बांदा, बुर्गीबा, कौन्डा, कीनयाटा डा. नेल्सन मंडेला, सैम नजुमा तथा सिथौले इत्यादि के साथ भी ऐसा ही हुआ। वे सभी जेलों से बाहर आकर और उग्र राष्ट्रवादी हो गए। उनके देशवासियों ने उनको अपने हीरो का दर्जा प्रदान किया। राष्ट्रीय भावनाओं को न तो जेल की सज़ा कम कर सकी, न यातनाएँ उन्हें दबा सकीं और न ही दमन के किसी अन्य उपाय से

### बोध प्रश्न 3

नोट: क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राष्ट्रीय आन्दोलनों में बुद्धिजीवियों की भूमिका का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) राष्ट्रीय आन्दोलनों के नेताओं के प्रेरक तत्त्व क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

### 6.5 राष्ट्रीय आन्दोलनों के कार्यक्रम

प्रारम्भिक चरणों में राष्ट्रीय आन्दोलन प्रायः आकस्मिक एवं असंगठित रहे। वे कुछ व्यक्तियों के स्थानीय विरोध-प्रदर्शन मात्र थे। फिर भी वे इस ओर संकेत थे कि उपनिवेशों में सर्वव्यापी क्रोध बढ़ रहा था। उपनिवेशवाद से त्रस्त लोगों का प्रथम विरोध प्रदर्शन राष्ट्रवादी विरोध का प्रतीक सिद्ध हुआ। साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा इनको बर्बरता और हिंसा से दबा दिया गया। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रवादी नेताओं को सोचना पड़ा कि औपनिवेशिक शक्तियों का विरोध करने के लिए उनको कौन से साधन अपनाने चाहिए।

जब प्रारम्भिक विद्रोह दबा दिए गए तब कुछ समय के लिए उपनिवेशों की जनता को विदेशी शासन के सम्मुख झुकना ही पड़ा। ऐसा 1857 के भारत के प्रथम विद्रोह के बाद हुआ। इसी प्रकार के परिणाम अन्य अनेक देशों में भी पाए गए। उस समय परायज की भावना से विदेशी शासन को, कोई विकल्प सामने न होने के कारण, स्वीकार कर लिया। आक्रामकों (विदेशी शासकों) की सैनिक शक्ति, तकनीकी ज्ञान एवं सांस्कृतिक वरिष्ठता को भी स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार श्वेत व्यक्ति की श्रेष्ठता के सिद्धान्त का विकास हुआ। पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार के साथ तथा बड़ी संख्या में स्थानीय निवासियों का प्रशासन तथा पाश्चात्य वाणिज्य और उद्यमों में प्रवेश इस बात का सूचक होने लगा कि उन्होंने भी वह सामर्थ्य प्राप्त कर ली थी जो कि श्वेत विदेशियों की श्रेष्ठता के लिए

उत्तरदायी थी। अतः, अब श्वेत शासकों के द्वारा एशिया-अफ्रीका के देशों पर अपने प्रभुत्व को जारी रखने का कोई औचित्य नहीं रह गया था। विदेशी शासक अब उनके भाग्य-विधाता बने नहीं रह सकते थे। अतः, राजनीतिक और आर्थिक रूप से पिछड़े हुए पराधीन लोगों में भी राष्ट्रीय जागरण भरपूर मात्रा में पाया जाने लगा।

यह राष्ट्रीय चेतना विदेशी शासन के विरुद्ध प्रतिरोध की मूल प्रवृत्ति का परिणाम मात्र नहीं थी, परन्तु यह सम्बद्ध समुदाय की अलग विशेष पहचान का एक जानबूझ कर दिया गया दावा था। भारत, इन्डोनेशिया, बर्मा, श्रीलंका तथा अन्य देशों में जहाँ लोगों में विदेशी शासन के विरुद्ध एकता की भावना उत्पन्न हुई, उस एकता को लाने में स्वयं विदेशी शासन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह एक नई प्रवृत्ति थी, क्योंकि पहले तो केवल वर्गों की अथवा क्षेत्रीय निष्ठा पाई जाती थी। परन्तु, अब देश भक्ति की देश व्यापी निष्ठा की उत्पत्ति हुई।

भारत में 1857 में राष्ट्रवाद की नवोदित भावना के दर्शन हुए। इसके पश्चात्, पूना सार्वजनिक सभा (1870) तथा इंडियन एसोसिएशन (1878) जैसी संस्थाओं ने इस भावना को एक राजनीतिक संगठनों का स्वरूप प्रदान किया। साथ ही इनमें पाश्चात्य विचारों का प्रवेश हुआ, और वे राष्ट्रीय आन्दोलन में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के पूर्वगामी सिद्ध हुए। चीन में विदेशियों के विरुद्ध सशक्त भावना की पृष्ठभूमि में, 1895 के पश्चात्, डा. सन यात-सेन (Sun Yat-Sen) और क'ऑंग यू-वी (K'ang Yu-Wei) ने क्रान्तिकारी सुधार आन्दोलन आरम्भ किए। उन्होंने ऐसा पश्चिमी साधनों का प्रयोग करके किया ताकि चीन को पूर्ण विनाश से बचाया जा सके। उसी प्रकार अन्य अनेक देशों में भी बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ऐसी ही राष्ट्रवादी संस्थाओं की स्थापना हुई। बर्निया, न्यू गिनी तथा मलाया जैसे कुछ प्रदेश ऐसे भी थे जहाँ पाश्चात्य विचार प्रवेश नहीं कर सके, और जहाँ जनसाधारण के जीवन पर सामान्यतया पश्चिमी विचारों तथा प्रौद्योगिकी क्रान्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यही कारण है कि मलाया में 1930 के दशक तक राष्ट्रीय आन्दोलन की उत्पत्ति तक नहीं हुई थी।

प्रत्येक देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के साधन, उसकी गति तथा शक्ति में स्थानीय परिस्थितियों और शासन व्यवस्था के अनुसार स्पष्ट भिन्नता पाई गई। ब्रिटिश भारत, बर्मा, डच ईस्ट इन्डीज़ (इन्डोनेशिया) और फ्रांसीसी हिन्द चीन के अन्नाम एवं तोंकिन प्रदेशों में राष्ट्रीय आन्दोलन का तेज़ी से विकास हुआ क्योंकि इन देशों की पराधीन जनता का साम्राज्यवादियों द्वारा प्रत्यक्ष शोषण हो रहा था। भारत में पहले उदार, और बाद में साम्राज्यवाद के विरुद्ध क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाए गए। परन्तु, ब्रिटिश सरकार के दमन के समक्ष इन आन्दोलनों के स्पष्ट परिणाम दिखाई नहीं दिए। परन्तु जब राष्ट्रीय आन्दोलन महात्मा गाँधी के हाथों में आया तब उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष के लिए, सत्य, प्रेम और अहिंसा पर आधारित असहयोग जैसे अनोखे आन्दोलन के मार्ग को अपनाया। उनके सत्याग्रह को आशा से अधिक सफलता प्राप्त हुई।

दूसरी ओर डच उपनिवेश ईस्ट इन्डीज़ (इन्डोनेशिया) तथा फ्रांसीसी हिन्द चीन में हिंसात्मक उपाय अपनाए, तथा अपने राष्ट्रीय आन्दोलनों को विकसित करने के लिए खूनी संघर्ष भी हुए। ऐसा विशेषकर तब हुआ जब जापान ने द्वितीय विश्व युद्ध में इन उपनिवेशों पर कब्ज़ा कर लिया, तथा लोगों को साम्राज्यवाद से घृणा करने की प्रेरणा दी। श्रीलंका में राष्ट्रीय आन्दोलन संवैधानिक सीमाओं के दायरे में ही रहा। ऐसा ही फिलीपीन्स में भी हुआ। वहाँ हिंसात्मक उपाय अपनाने की आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि अमेरिका ने फिलीपीन्स को पूर्ण स्वतंत्रता का आश्वासन 1935 में ही दे दिया था। ईरान, अफ़गानिस्तान, चीन एवं

थाईलैण्ड जैसे स्वतन्त्र देशों में (जहाँ विदेशी हस्तक्षेप और प्रभुत्व विद्यमान था), राष्ट्रीय आन्दोलनों का उद्देश्य आन्तरिक और बाह्य मामलों में विदेशी हस्तक्षेप से मुक्ति प्राप्त करना था। इन देशों में जो उपाय अपनाए गए वे प्रायः कूटनीतिक और कभी-कभी सशस्त्र विद्रोह अथवा वास्तविक युद्ध जैसे थे। स्वतन्त्र जापान में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति बिलकुल अलग थी। यह आन्दोलन, बीसवीं शताब्दी में, विस्तार के लिए था, अतः जापान ने सैन्य और आक्रामक साधन अपनाए। वहाँ तथाकथित राष्ट्रीय आन्दोलन ने वास्तव में साम्राज्यवाद की नीति अपनाई।

प्रथम विश्व युद्ध ने राष्ट्रीय आन्दोलनों को काफ़ी प्रोत्साहन दिया। कुछ अंश में यह राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर चलाए गए। अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने युद्ध के उद्देश्यों के संबंध में घोषणा की कि राष्ट्रीय अभिलाषाओं का सम्मान किया जायगा, तथा आत्म-निर्णय का अधिकार इसका एक प्रमुख सिद्धान्त होगा। इस घोषणा के आधार पर लोगों ने अपने आत्म-निर्णय के अधिकार पर जोर दिया। इस प्रकार यह सिद्धान्त राष्ट्रीय आन्दोलनों का एक प्रमुख लक्ष्य बन गया।

वास्तव में कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रथम विश्व युद्ध को आधुनिक एशियाई राष्ट्रवाद के आरम्भ का काल कहा जा सकता है। स्वतंत्रता के लक्ष्य की ओर, राष्ट्रवाद, जैसे दो पैरों पर चलने लगा। एक था: विदेशी शासन के विरुद्ध विरोध-प्रदर्शन और विदेशी प्रभुत्व का विरोध तथा दूसरा राष्ट्रीय औद्योगीकरण के प्रयास। इस प्रकार का राष्ट्रवाद चीन और भारत में सबसे शक्तिशाली था जहाँ “राष्ट्रीय पूँजीवादी वर्ग” ने राष्ट्रीय आन्दोलनों का समर्थन किया तथा अपने-अपने देश की आर्थिक व्यवस्था से विदेशी पूँजीपतियों के निष्कासन का प्रयास किया। यह दोनों देश (भारत और चीन) पाश्चात्य साम्राज्यवाद के विरुद्ध एशियाई विद्रोह के नेता के रूप में उभरे। उधर अरब राष्ट्रवाद भी विकसित होने लगा। ऐसा टर्की के ऑटोमन साम्राज्य की समाप्ति के पश्चात् ही हुआ। साथ ही, प्रथम विश्व युद्ध में पराजित होने के पश्चात्, स्वयं टर्की में राष्ट्रवाद ने पश्चिमी देशों को चुनौती दे डाली। टर्की का स्तर विश्व में ऊँचा उठ गया जब वहाँ एक गणतन्त्र की स्थापना हो गई।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रीय आन्दोलन अपने शिखर पर पहुँच गए। इसमें कोई संदेह नहीं कि जितने सशक्त राष्ट्रीय आन्दोलन युद्धकाल में हुए, उससे पूर्व कभी उतने नहीं थे। जिस प्रकार प्रथम विश्व युद्ध के दौरान राष्ट्रपति विल्सन ने आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की घोषणा की थी, उसी प्रकार 1941 में राष्ट्रपति फ्रैंक्लिन रूज़वेल्ट तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल के अटलांटिक चार्टर का भी एक सिद्धान्त आत्म-निर्णय का अधिकार था। अतः, इसमें व्यवस्था थी कि, “... वे सभी लोगों के इस अधिकार का सम्मान करते हैं कि उनको उस सरकार के रूप का चयन करने का अधिकार हो जिसके अधीन वे निवास करेंगे; तथा वे यह भी चाहते हैं कि जिन से स्वशासन का अधिकार छीन लिया गया है उनको यह संप्रभु अधिकार वापस दिया जाए। उपनिवेशों की जो जनता आत्म-निर्णय के लिए संघर्ष कर रही थी, उसने युद्ध के पश्चात् यह माँग की कि पाश्चात्य देश अटलांटिक चार्टर की भावना के अनुसार उन्हें स्वाधीनता प्रदान करें, ताकि लोग स्वेच्छा से अपनी सरकारों का गठन कर सकें।” स्वाभाविक था कि पाश्चात्य देश ऐसा करने के लिए तैयार नहीं थे। परन्तु, साथ ही कई वर्षों तक शत्रु से युद्ध करके वे शक्तिहीन भी हो गए थे। वे राष्ट्रीय आन्दोलन की स्वतन्त्रता की सशक्त लहर को अधिक देर तक टाल नहीं सकते थे।

इस सबका परिणाम यह हुआ कि शक्तिशाली विरोध (सभी जगह), शांतिपूर्ण सत्याग्रह (भारत) के द्वारा, क्रान्ति (अल्जीरिया) के द्वारा, गृह युद्ध (चीन) के द्वारा अथवा औपनिवेशिक युद्ध (वियतनाम), सन् 1945 के पश्चात्, पचास से अधिक एशियाई-अफ्रीकी देशों को

स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। इनमें से अधिकांश देशों में स्वतन्त्रता आन्दोलनों का नेतृत्व चमत्कारी नेताओं ने किया।

राष्ट्रीय आन्दोलनों की  
विचारधारा, सामाजिक आधार  
तथा उनके कार्यक्रम

#### बोध प्रश्न 4

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) राष्ट्रीय आन्दोलनों में पाश्चात्य शिक्षा की क्या भूमिका रही?

.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....

2) राष्ट्रीय आन्दोलनों में जिन साधनों का प्रयोग किया गया वे कौन से थे?

.....  
.....  
.....  
.....  
.....  
.....

#### 6.6 सारांश

इस इकाई में आपने राष्ट्रीय आन्दोलनों के विभिन्न पक्षों, जैसे उनकी विचारधारा, उनके सामाजिक आधार तथा उनके कार्यक्रमों, के विषय में पढ़ा।

राष्ट्रीय आन्दोलनों की विचारधारा मूल रूप से क्रान्तिकारी रही। परन्तु, यह भी स्मरण रखना होगा कि इनमें से अनेक क्रान्तिकारी आन्दोलनों में अहिंसा रूपी साधन का प्रयोग भी किया गया। वैसे भी, आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक क्रान्ति में हिंसात्मक विरोध ही किया जाए। उपनिवेशों की शोषित जनता द्वारा प्रायः जब भी हिंसा का सहारा लिया गया वह शासकों द्वारा प्रयुक्त हिंसा के उत्तर के रूप में ही था। वह तो शोषण का प्रत्योत्तर था। अनेक लोगों के लिए साधन एवं साध्य की एकता नितांत आवश्यक नहीं थी। यह सत्य है कि **गाँधीजी** जैसे नेताओं ने साध्य और साधन की एकता पर बल देते हुए कहा था कि केवल अहिंसात्मक साधन प्रयोग करके ही अहिंसात्मक समाज एवं उत्तम और कुलीन साध्य की प्राप्ति हो सकेगी।

सभी राष्ट्रीय आन्दोलनों को जनसाधारण का **समर्थन प्राप्त** था। परन्तु उनका आरम्भ एवं नेतृत्व सामान्यतया थोड़े से नेताओं और क्रान्तिकारियों ने किया था। उनके बलिदानों के

फलस्वरूप न केवल उनके देशों वरन् विदेशों में भी उनके अनुयायियों ने उनके मार्ग पर चलने की चेष्टा की। अतः, किसी न किसी प्रकार सभी राष्ट्रीय आन्दोलन एक दूसरे से सम्बद्ध हो गए थे। उन्हें सफल विरोध-प्रदर्शन से प्रेरणा मिली थी।

इन आन्दोलनों का कोई पूर्व-निश्चित कार्यक्रम तो था नहीं, यद्यपि इनके नेताओं, दलों तथा बुद्धिजीवियों ने किसी न किसी रूप में एकीकृत कार्यक्रम को प्रस्तुत किया जो कि जनसाधारण की अंतिम स्वीकृति पर आधारित था। मूल उद्देश्य तो सभी का यह था कि साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा किया जा रहा शोषण समाप्त हो।

---

## 6.7 शब्दावली

---

राष्ट्रीय आन्दोलन	:	एक ऐसा आन्दोलन जिसका आधार स्वतन्त्रता, या मुक्ति, की राष्ट्रीय भावना हो। यह भावना प्रायः पराधीन देशों की जनता में पाई गई।
स्थानीय (मूल) निवासी	:	किसी ऐसे देश के मूल निवासी जिसको विदेशी शक्ति ने पराधीन बना दिया हो।
उपनिवेशवादी (Colonizers)	:	किसी ऐसे देश के विदेशी शासक और शोषणकर्ता जिस पर उन्होंने अपनी औपनिवेशिक व्यवस्था स्थापित कर रखी हो।
विचारधारा	:	किसी उद्देश्य-विशेष की प्राप्ति के लिए सुनिश्चित योजना पर आधारित विचार तथा कार्यक्रम।
अहिंसा	:	शांतिपूर्ण उपायों (साधनों) का प्रयोग, अथवा शांतिपूर्ण समाधान।

---

## 6.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

---

Chavan, R.S. : *Nationalism in Asia*

Smith, Anthony D. : *Theories of Nationalism*

Emerson, Rupert : *From Empire to Nation*

Godement, Francois : *The New Asian Renaissance*

Kebschull, Harvey G. : *Politics in Transitional Societies*

Shafer, Boyd C. : *Faces of Nationalism*

Watson, Hugh Seton : *Nations and States*

---

## 6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

### बोध प्रश्न 1

- 1) मूल निवासियों को हीन अनुभव करवाया गया; अश्वेत अफ्रीकियों पर दासता ने अपना कलंकित धब्बा छोड़ दिया था। वे स्वयं को हीन समझते थे। एशिया-अफ्रीका के देशों

के लोगों की अपनी शासन व्यवस्था के संचालन में कोई निर्णायक आवाज़ नहीं थी। उनको सभी राजनीतिक अधिकारों तथा अनेक नागरिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया था। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए उपभाग 6.2.1 देखें।)

- 2) ईसाई धर्म-प्रचारकों ने अनेक मूल निवासियों का धर्म परिवर्तन करवा कर उन्हें ईसाई बनाया। फिर भी यह मूल निवासी उनके अधीन तथा दबे और सहमे हुए रहे। पुराने धार्मिक विश्वासों और जीवन शैली को चुनौती दी गई। इन कार्यों के परिणामस्वरूप शक्तिशाली राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए उपभाग 6.2.3 देखें।)

## बोध प्रश्न 2

- 1) विचारधारा ऐसा आधार होती है जिससे ही किसी परिवर्तनशील समाज की भागीदारी के महत्व का अनुभव होता है। सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोग एक दूसरे से सम्बन्ध, तथा एक दूसरे के प्रति निष्ठा स्थापित करते हैं। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए भाग 6.3 देखें।)
- 2) विदेशी राजनीतिक प्रभुत्व के विरुद्ध विद्रोह को राष्ट्रवाद कहा जाता है। यह आर्थिक शोषण तथा जातीय भेदभाव अथवा असमानता का प्रतीक भी है। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए भाग 6.3 देखें।)

## बोध प्रश्न 3

- 1) बुद्धिजीवियों और नेताओं ने पहले राष्ट्रीय आन्दोलनों का आरम्भ किया। उन्होंने जनसाधारण को संगठित किया, तथा उनको विदेशी शासन से स्वतन्त्र होने की आवश्यकता समझाई। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए भाग 6.4 देखें।)
- 2) प्रत्येक नेता को अलग-अलग प्रेरणा मिली। उदाहरण के लिए इन्डोनेशिया में डा. सुकर्ण ने व्यक्तिगत शक्ति की तलाश की जिसमें न केवल अधिक धन उपलब्ध हो, वरन् विशालकाय निवास, बड़ी गाड़ियाँ इत्यादि शामिल थे। परन्तु, भारत में नेहरू और तन्ज़ानिया में नायरेरे ऐसे आदर्शवादी थे जिन्होंने देश को अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं से सदैव ऊपर रखा। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए भाग 6.4 देखें।)

## बोध प्रश्न 4

- 1) पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार, तथा उसके फलस्वरूप स्थानीय लोगों के प्रशासन में प्रवेश से उन्हें यह अनुभव हुआ कि वे स्वयं अपने भाग्य के विधाता हो सकते थे। इससे राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए भाग 6.5 देखें।)
- 2) प्रत्येक देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रयोग किए गए साधन एक दूसरे से अलग थे। भारत में सामान्यतया शांतिपूर्वक, अहिंसात्मक विरोध किया गया। उधर इन्डोनेशिया (डच), तथा फ्रांसीसी हिन्द चीन में हिंसा पर आधारित साधनों का प्रयोग किया गया। (कृपया विस्तृत विवरण के लिए भाग 6.4 देखें।)